भगवान् तीन लोकके नाथ, स्याद्वाद विद्याके स्वामी, अनन्त चतुष्टय[1] सहित हैं और उनकी पूजा श्रीमूलसंघके[2] सम्यग्दृष्टियोंको पुण्यका एक कारण है।

सौगन्धसंगतमधुव्रतझंकृतेन,
सौवर्ण्यमानमिव गन्धमनिन्द्यमादौ।
आरोपयामि विबुधेश्वरवृन्दवन्द्य-
पादारविन्दमभिवन्द्य जिनोत्तमानाम् ॥ २ ॥

(यह पढ़कर अपने ललाटादि स्थानोंमें तिलक लगाना चाहिये)

शब्दार्थ—सौगन्ध=अच्छी वास, सङ्गत=सहित, मधुव्रत=भौंरा, झङ्कृतेन=गुंजारसे, सौवर्ण्यमानं=प्रशंसित, इव=समान, गन्धं=चन्दन, अनिन्द्यं=उत्तम, आदौ= पहिले, आरोपयामि=लगाता हूं, विबुध=देव, ईश्वर=स्वामी, विबुधेश्वर=देवेन्द्र, वृन्द=समूह, वन्द्य=पूजनीय, पादारविन्दं=चरणकमलको, अभिवन्द्य=नमस्कार करके, जिनोत्तमानाम्=तीर्थङ्करोंके।

अर्थ—जो सुगंधित है और भौंरोंके गुंजार शब्दसे मानो प्रशंसित है ऐसे उत्तम चन्दनको मैं पूजाके आरंभमें लगाता हूं। 'क्या करके लगाता हूं' देवेन्द्र समूहके द्वारा पूजनीय तीर्थङ्करोंके चरण कमलोंको नमस्कार करके "लगाता हूं"।

---

१ पूर्णज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण बल। २ मूलसंघ काष्ठासंघ आदि दिगम्बर जैनधर्मकी सम्प्रदायें है।

भावार्थ—चन्दनपर जो भौंरा गूंज रहे हैं वे मानो उसे सूंघकर उसके गुणोंका वर्णन कर रहे हैं।

ये सन्ति केचिदिह दिव्यकुलप्रसूता,
नागाः प्रभूतबलदर्पयुता विबोधाः।
संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां,
प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥ २ ॥

(यह पढ़कर अभिषेकके लिये आगेकी भूमिका प्रक्षालन करना चाहिये)

शब्दार्थ--ये=जो, सन्ति=हैं, केचित्=कोई, दिव्यकुल=देववंश, प्रसूताः=उत्पन्न, नागाः=बहुतसे नागकुमार, प्रभूत=बहुत दर्प=घमंड, युता=सहित, अविबोध=ज्ञान, संरक्षणार्थ=रक्षा करनेके लिये, अमृतेन=जलसे, शुभेन=शुभसे, तेषां=उनसे, प्रक्षालयामि=धोता हूं, पुरतः=चारोंतरफ, स्नपनस्य=स्नानकी, भूमि=धरतीको ।

अर्थ—जो कोई यहां देवकुलमें उत्पन्न नागकुमार आदि देव हैं, और उनका बल अभिमान तथा ज्ञान बहुत है। उनसे रक्षित रहनेके लिये उत्तम जलसे अभिषेकका स्थान प्रक्षालित करता हूं।

अर्थात् जहांतक जलसे धोया है वहांतक वे देव उपद्रव न करें ।

क्षीरार्णवस्य पयसां सुचिभिः प्रवाहैः,
प्रक्षालितं सुरवरैर्यदनेकवारम् ।

अत्युद्यमुद्यतमहं जिनपादपीठं,
प्रक्षालयामि भवसंभवतापहारि ॥ ४ ॥

सिंहासन अथवा जिस आसनपर विराजमान करके अभिषेक करना हो, उसका प्रक्षालन करके 'श्री' वर्ण लिखना चाहिये)

शब्दार्थ—क्षीरार्णवस्य=क्षीर समुद्रके, पयसां=पानीकी, शुचि=पवित्र, प्रवाहैः=धाराओंसे, प्रक्षालित=धोया है, सुरवरैः=देवेन्द्रोंके द्वारा, यत=जो, अत्युद्यमुद्यतम्=बहुत ही उत्साह सहित, जिनपादपीठं=भगवानके सिंहासनको, प्रक्षालयामि=धोता हूं, भव=संसार, संभव=उत्पन्न, ताप=दुःख, हारि=दूर करनेवाला,

अर्थ—क्षीर सागरके जलकी पवित्र धाराओंसे, जो देवेन्द्रोंके द्वारा, अनेकवार प्रक्षालित किया गया है, उस जिनेन्द्रसिंहासनको वड़े ही उत्साहसे प्रक्षालित करता हूं। वह सिंहासन सांसारिक दुःखोंको हरनेवाला है।

इन्द्राग्निदण्डधरनैर्ऋतपाशपाणि—
वायूत्तरेशशशिमौलिफणीन्द्रचन्द्राः।
आगत्य यूयमिह सानुचराः सचिह्नाः
स्वं स्वं प्रतीच्छत वलिं जिनपाभिषेके ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—इन्द्र=देवताओंका राजा, दण्डधर=यम, पाशपाणि=वरुण, उत्तरेश=कुवेर, शशिमौलि=ऐशान, फणीन्द्र=

धरणीन्द्र, आगत्य=आकर, यूयं=आप, इह=यहां, सानुचराः=सेचकों सहित, सचिह्नाः=चिह्नों सहित, स्वं स्वं=अपना अपना, प्रतीच्छत=लेओ, बलिं=होम सामग्रीको, जिनप=जिनेन्द्र, अभिषेके=स्नानमें ।

अर्थ—हे इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, वायु, कुबेर, ऐशान, धरणीन्द्र और चन्द्र, आप लोग अपने सेवकों और चिह्नों सहित यहां आकर, भगवानके अभिषेकमें अपनी अपनी पूजा सामग्री ग्रहण करो।

(फूल आदि लेकर दशों दिशाओंमें निम्नलिखित मंत्र पढ़कर दश दिक्पालोंकी स्थापना करना चाहिये)

१ ॐ आं क्रौं ह्रीं इन्द्र आगच्छ आगच्छ इन्द्राय स्वाहा । २ ॐ अग्ने आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा। ३ ॐ यम आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा । ४ ॐ नैऋत आगच्छ आगच्छ नैऋताय स्वाहा । ५ ॐ वरुण आगच्छ आगच्छ वरुणाय स्वाहा । ६ ॐ पवन आगच्छ आगच्छ पवनाय स्वाहा । ७ ॐ कुबेर आगच्छ आगच्छ कुबेराय स्वाहा । ८ ॐ ऐशान आगच्छ आगच्छ ऐशानाय स्वाहा । ९ ॐ धरणीन्द्र आगच्छ आगच्छ धरणीन्द्राय स्वाहा। १० ॐ सोम आगच्छ आगच्छ सोमाय स्वाहा ।

शब्दार्थ—आगच्छ=आओ, इन्द्राय=इन्द्रके लिए अग्नये=अग्निके लिए, स्वाहा= अर्पण करता हूं ।

अर्थ—ऊपर लिखे हुए दशों देव आओ! आओ!! हम तुम्हारे लिये पूजनसामग्री अर्पण करते हैं।

यंपाण्डुकामलशिलागतमादिदेव-
मस्नापयन्सुरवराः सुरशैलमूर्ध्नि ।
कल्याणमीप्सुरहमक्षततोयपुष्पैः
संभावयामि पुर एव तदीयबिम्बम् ॥ ६ ॥

(जल पुष्प अक्षतादि क्षेपणकरके श्रीवर्णपर जिनबिम्बकी स्थापना करना चाहिये)

शब्दार्थ—यम्=जिनको, अमल=निर्मल, शिला=चट्टान, आगत=आये हुए, आदिदेवं=ऋषभदेवको, अस्नापयन्=स्नान कराया, सुरवराः=देवेन्द्रोंने, सुरशैल=सुमेरु पर्वत, मूर्ध्नि=ऊपर, कल्याणं=भलाई, ईप्सुः=इच्छक, अहं= मैं, तोय=जल, पुष्पैः=फूलोंसे, संभावयामि=स्थापित करता हूं, पुरएव=यहां आगे ही, तदीय=उन्हींकी, बिम्बं=प्रतिमाको ।

अर्थ—सुमेरु पर्वतकी पांडुक शिला पर लाकर, देवेन्द्रोंने जिन ऋषभदेवका स्नान कराया था; उन्हींकी प्रतिमाको भलाईका इच्छक मैं भी अक्षत, जल और फूलोंसे यहां स्थापित करता हूं ।

भावार्थ—देवेन्द्रोंने साक्षात् भगवानको स्थापित किया था, मैं उनकी प्रतिमाको करता हूं । देवेन्द्रोंने पांडुक शिला पर किया था मैं यहीं पर करता हूं ।

सत्पल्लवार्चितमुखान्कलधौतरूप्य—
ताम्रारकूटघटितान्पयसा सूपूर्णान् ।
संवाद्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान्
संस्थापयामि कलशान् जिनवेदिकान्ते ॥७॥

(पुष्प अक्षतादि क्षेपण करके वेदीके कोनोंमें चार कलशोंकी स्थापना करना चाहिये)

शब्दार्थ—सत्=अच्छे, पल्लव=पत्ते, अर्चित=सहित, मुखान्=मुखवाले, कलधौत=सोना, रूप्य=चाँदी, ताम्र=ताम्बा, आरकूट=पीतल, घटितान्=बनेहुए, पयसा=जलसे, सुपूर्णान्=खूब भरे हुए, संवाद्यतां=कहलाये गये, इव=समान, गतां=प्राप्त, चतुरः=चार, संस्थापयामि=स्थापित करता हूं, कलशान्=घड़ोंको, जिनवेदिकान्ते=भगवानकी वेदीके पास ।

अर्थ—उत्तम पत्ते जिनके मुखपर ढँके हुए हैं, जिनमें खूब जल भरा हुआ है, और जलसे भरे हुए चार समुद्रोंके समान हैं, ऐसे सोने, चाँदी, ताम्बे और पीतलके घट, भगवानकी वेदीके पास स्थापित करता हूं ।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना
चन्दनेन,

श्रीदृक्पेयैरमीभिः अतिशुचिधवलैः
तन्दुलैरेभिपुष्पैः ❀ ।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिदंदीपयद्भिः प्रदीपै-
र्धूपैः प्रायोभिरेभिः पृथुभिरपी फलैरेभिरीशं
यजामि ॥ ८ ॥

(यह पढ़कर अर्घ चढ़ाना चाहिये)

शब्दार्थ—आभिः=इस, पुण्य=पवित्र, अद्भिः=जलसे, परिमल=सुगंधित, बहुल=अधिक, अमुना=इस, चन्दनेन=चन्दनसे श्रीदृक्पेयैः=नेत्रोंसे पीनेयोग्य, अमीभिः=इनसे, अति शुचि=बहुत पवित्र, धवल=सफेद, तंदुलैः=अक्षतोंसे, एभिः=इनसे, पुष्पैः=फूलोंसे, हृद्यैः=सुन्दर, निवेद्यैः=नेवजोंसे, मखभवनम्=पूजाके मंदिरको, इदं=इस, दीपयत्=प्रकाशित, प्रदीपैः=दीपकोंसे, पृथुभिः फलैः=बढ़िया फलोंसे, ईशं=भगवानको, यजामि=पूजता हूं।

अर्थ—इस पवित्र जलसे, इस बहुत सुवासित चन्दनसे, नेत्रोंको प्यारे अति पवित्र और शुद्ध अक्षतों, फूलों तथा सुन्दर नेवजोंसे, मंदिरको प्रकाशित करनेवाले इन दीपोंसे, उत्तम धूपसे और अच्छे फलोंसे, भगवानकी पूजा करता हूं।

❀ प्रचलित मुद्रित पुस्तकोंमें "शुचिरुदकचैयरुद्गमैरभिरुद्धैः" ऐसा पाठ है जिसका कुछ ठीक अर्थ नहीं भासनेसे पाठ बदल दिया है कोई विद्वान् प्रचलित पाठका अर्थ लिख भेजेंगे तो प्रसिद्ध करदिया जावेगा ।

दूरावनम्रसुरनाथकिरीटकोटि-
संलग्नरत्नकिरणच्छविधूसरांघ्रिम् ।
प्रस्वेदतापमलमुक्तमपि प्रकृष्टै-
र्भक्त्या जलैर्जिनपतिं बहुधाऽभिषिञ्चे ॥ ९ ॥

(शुद्ध जलकी धारा प्रतिमापर छोड़ना चाहिये)

शब्दार्थ--दूरावनम्र=दूरसे नम्रीभूत, सुरनाथ=इन्द्र, किरीट=मुकुट, कोटि=समूह, संलग्न=लगे हुए, रत्न=मणि, छवि=कान्ति, धूसर=चितकबरे, अङ्घ्रि=चरण, प्रस्वेद=पसीना, ताप=गर्मी, मल=मैल, मुक्त=रहित, अपि=भी, प्रकृष्ट=उत्तम, भक्त्या=भक्तिसे, जिनपति=भगवानको, बहुधा=अनेक प्रकारसे, अभिषिञ्चे=स्नान कराता हूं ।

अर्थ—दूरसे नमस्कार करते समय इन्द्रोंके मुकुटमणियोंकी किरणोंसे जिनके चरणोंकी कान्ति मलीन हो जाती है, और जिनको पसीना, गर्मी और मैल नहीं है, उन जिन भगवानको मैं भक्तिवश स्नान कराता हूं ।

भावार्थ—जब इन्द्रोंके समूह भगवानको नमस्कार करते हैं तब भगवानके चरणों पर इन्द्रोंके मुकुटमणियोंकी प्रभा पड़ती है और उससे भगवानके चरणोंकी छवि रंग-विरंगी हो जाती है ।

भक्त्याललाटतटदेशनिवेशितोच्चै-
र्हस्तैश्च्युताः सुरवरासुरमर्त्यनाथैः ।
तत्कालपीलितमहेक्षुरसस्य धारा
सद्यः पुनातु जिनबिम्बगतैव युष्मान् ॥१०॥

(इक्षुरसकी धारा॰)

शब्दार्थ—भक्त्या=भक्तिसे, ललाटतटदेश=मस्तकके पास, निवेशित=पहुंचे हुए, हस्तैः=हाथोंसे, च्युताः= गिरी हुई, सुरवर=कल्पवासी देव, असुर=भवनवासी देवोंकी एक जाति, मर्त्य=मनुष्य, नाथैः=स्वामियोंके द्वारा, तत्काल=तुरन्त, पीलित=पेले हुए, महेक्षु=उत्तम गन्ना, रसस्य=रसकी, सद्यः=शीघ्र, पुनातु=पवित्र करे, जिनबिम्बगता=जिन प्रतिमा पर आई हुई, एव=ही, युष्मान्=आप लोगोंको ।

अर्थ—भक्तिवशात्, मस्तकतक ऊंचे किये हुए हाथोंसे सुरेन्द्र असुरेन्द्र, और नरेन्द्रोंके द्वारा गिरकर, जिनप्रतिबिम्ब पर आई हुई, तुरन्त पेले हुए गन्नेके रसकी धारा, आप लोगोंको शीघ्र ही पवित्र करे ।

उत्कृष्टवर्णनवहेमरसाभिराम-
देहप्रभावलयसङ्गमलुप्तदीप्तिम् ।

---

१ यदि अभिषेकके समय इक्षु, घी, दूध, दही आदि चढ़ानेका साधन न हो तो उनके पाठ नहीं बोलना चाहिये ।

धारां घृतस्य शुभगन्धगुणानुमेयां
वन्देऽर्हतां सुरभिसस्नपनोपयुक्ताम् ॥११॥

(घृतरसकी धारा०)

शब्दार्थ—उत्कृष्ट=उत्तम, वर्ण=रंग, नव=नया, हेम=सोना अभिराम=सुन्दर, देह=शरीर, प्रभावलय=कान्तिका समूह, सङ्गम=साथ, लुप्त=छिपी हुई, दीप्ति=कान्ति, घृतस्य=घीकी, शुभगन्ध=अच्छीवास, अनुमेयां=समझमें आनेवाली, वन्दे=नमस्कार करता हूं, अर्हताम्=अरहन्तोंको, सुरभि=सुगंधित, स्नपन=स्नान, उपयुक्त=योग्य ।

अर्थ—तपाये हुए सोनेके समान उत्तम रंगवाले शरीरके प्रभामंडलके संगसे जिसकी प्रभा छिप गई है, पर सुगंधसे जानी जाती है (कि यह घी की धारा है) और जो भगवानके सुगंधित स्नानके योग्य है उस घीकी धाराको वन्दना करता हूं ।

संपूर्णशारदशशाङ्कमरीचिजाल-
स्यन्दैरिवात्मयशसामिव सुप्रवाहैः ।
क्षीरैर्जिनाः शुचितरैरभिषिच्यमाणाः
संपादयन्तु मम चित्तसमीहितानि ॥१२॥

(दुग्धरसकी धारा०)

शब्दार्थ—संपूर्ण=पूरे, शारद=शरद ऋतुके, शशाङ्क=च-

न्द्रमा, मरीचिजाल=किरणसमूह, क्षीर=दूध, स्यन्दैः इव=प्रवाहके समान, आत्म=अपने, यश=कीर्ति, प्रवाह=बहाव, शुचितर=अत्यन्त पवित्र, अभिषिच्यमाणाः=स्नान किये हुए, सम्पादयन्तु=पूरी करो, मम=मेरे, चित्तसमीहितानि=मनकी इच्छाएं ।

अर्थ—शरद् ऋतुकी पूर्णमासीके चन्द्रमासे गिरी हुई चन्द्रकिरणोंके समान, अथवा अपने यशप्रवाहके समान, अति पवित्र दूधसे स्नान किये हुए हे जिनेन्द्र! हमारी इच्छायें पूरी करो।

दुग्धाब्धिवीचिजलसंचितफेनराशि-
पाण्डुत्वकान्तिमवधारयतामतीव ।
दध्नो गता जिनपतेः प्रतिमां सुधारा
सपद्यतां सपदि वाञ्छितसिद्धये वः ॥१३॥

दहीकी धारा०

शब्दार्थ-दुग्धाब्धिवीचिजल=क्षीर समुद्रकी तरंगोंके, जलसे सञ्चित=एकट्ठा हुआ, फेन=फसूकर, झाग, राशि=ढेर,पाण्डुत्व-कान्तिम्=सफेद कान्तिका, अवधारयातामू=धारण करनेवाली, अतीव=अत्यन्त, दध्नः=दहीकी, गता=प्राप्त, जिनयते प्रतिमां=भगवानकी मूर्तिको, सुधारा=सुन्दरधारा, संपद्यतां=दे, सपदि=शीघ्र, वाञ्छित=इच्छित, सिद्धये=सिद्धिके लिये, वः=आप-लोगोंको ।

अर्थ—क्षीर समुद्रकी तरंगोंके जलसे एकट्ठे हुए झागोंके ढेरके समान् कान्तिवान् दहीकी सुन्दर धारा; जो भगवानकी प्रतिमापर डाली गई है; वह आप लोगोंको शीघ्र ही इच्छित सिद्धि देवै।

संस्नापितस्य घृतदुग्धदधीक्षुवाहैः,
सर्वाभिरोषधिभिरर्हतउज्ज्वलाभिः ।
उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेला,
कालेयकुङ्कुमरसोत्कटवारिपूरैः ॥१४॥

(सर्वौषधिरसकी धारा०)

शब्दार्थ—सस्नापित=स्नान कराये हुए, अर्हतः=अरहंतका, घृत=घी, दुग्ध=दूध, ईक्षुवाहै=गन्नेके रसका प्रवाह, सर्व=सब, ओषधिभिः=दवाइयोंसे, उज्ज्वल=निर्मल, उद्वर्तित=स्वच्छ किये हुए, विदधामि=करता हूं, अभिषेक=स्नान, एला=इलायची, कालेय=चन्दन कुङ्कुम=केशर, उत्कट=उत्कृष्ट, वारि=जल पूरैः=धाराओंसे।

अर्थ—घी, दूध, दही और गन्नेके रससे स्नान कराये हुए तथा निर्मल सर्वौषधियोंसे स्वच्छ किये हुए अरहन्त भगवानका अभिषेक, इलायची चन्दन केशर आदिकी उत्कृष्ट जलधाराओंसे करता हूं।

इष्टैर्मनोरथशतैरिव भव्यपुंसां,
पूर्णैः सुवर्णकलशैर्निखिलैर्वसानैः ।
संसारसागरविलङ्घनहेतुसेतु-
माप्लावय त्रिभुवनैकपतिं जिनेन्द्रम् ॥ १५ ॥

(कलशोंसे अभिषेक)

शब्दार्थ--इष्ट=प्यारे, उत्तम, मनोरथ=अभिप्राय, शतैः= सैकड़ों, इव=समान, भव्यपुंसां=सज्जन पुरुषोंके, निखिल= सम्पूर्ण, संसारसागर=संसाररूपी समुद्र, विलङ्घन=पार करना, हेतु=कारण, सेतु=पुल, आप्लावय=स्नान कराओ, त्रिभुवनैकपतिं=तीनलोकके स्वामी, जिनेन्द्रं=भगवानको,

अर्थ–सज्जनोंके सैकड़ों उत्तम अभिप्रायोंके समान, परिपूर्ण जलसे भरे हुए सुवर्णघटोंके द्वारा संसार समुद्रसे पार करनेवाले पुल और तीन लोकके प्रधान स्वामी, जिनेन्द्र भगवानको स्नान कराओ।

द्रव्यैरनल्पघनसारचतुःसमाद्यै-
रामोदवासितसमस्तदिगन्तरालैः ।
मिश्रीकृतेन पयसा जिनपुङ्गवानां,
त्रैलोक्यपावनमहं स्नपनं करोमि ॥ १६ ॥

(सुगंधित जलकी धारा०)

शब्दार्थ—द्रव्यैः=पदार्थोंसे, अनल्प–बहुतसे, घनसार=क-

पूर, चतुः समार्थै[1]:=चार प्रकारके चन्दनोंसे, आमोदवासित=सुगंधसे व्याप्त, समस्त=सब, दिगन्तराल=दिशाएं, मिश्रीकृत=मिलाया हुआ, पयसा=जलसे, जिनपुङ्गवानाम्=जिनेन्द्रोंका, त्रैलोक्यपावन=तीनों लोकोंको पवित्र करने वाले, स्नपन=स्नान, अभिषेक, करोमि=करता हूं।

अर्थ—बहुत कर्पूर, चारों प्रकारके चन्दन और सब दिशाओंको सुगन्धमय करने वाले पदार्थोंसे मिले हुए जलसे, तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले भगवानका अभिषेक करता हूं।

मुक्तिश्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्याङ्कुरोत्पादकं
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकम्।
सम्यग्ज्ञानचरित्रदर्शनलतासंवृद्धिसंपादकं
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन स्नानस्य
गन्धोदकम्॥ १७॥

(यह श्लोक पढ़कर गन्धोदक लेकर मस्तकपर लगाना चाहिये)

शब्दार्थ—मुक्तिश्रीवनिताकरोदकम्=मोक्षलक्ष्मीरूप स्त्रीके पाणिग्रहणका जल, इदं=यह, पुण्याङ्कुर=पुण्यके पौधे, उत्पादकं=उत्पन्न करनेवाला नागेन्द्र=धरणीन्द्र, त्रिदशेन्द्र=देवेन्द्र, चक्रपदवी=छह खंड पृथ्वीका स्वामित्व, राज्याभिषेक=राज्य ग्रहणके समयका स्नान, लता=बेलि, संवृद्धि=बढ़ती, कीर्तिश्री=यशो लक्ष्मी, स्नानस्य=स्नानका, गन्धोदकं=सुगंधितजल।

---

१ इसका ठीक अर्थ नहीं बैठता

अर्थ—हे भगवान! आपके स्नानका यह गंधोदक मुक्तिलक्ष्मीरूप स्त्रीके पाणिग्रहणके लिए संकल्पके जल समान है, पुण्यके अंकुर पैदा करनेवाला है, नागेन्द्र, देवेन्द्र और चक्रेन्द्र पदका राज्याभिषेक करानेवाला है, सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्ररूपी बेलिको वृद्धि देनेवाला है और कीर्तिलक्ष्मीकी प्राप्तिका कारण है।

प्रार्थना।

वाचको! श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार, भक्तामर, कल्याण मंदिर आदिके समान कोष्टक देकर अन्वय अर्थ छपनेसे यद्यपि सुचतुर विद्यार्थियोंको लाभ होता है परन्तु सर्व साधारण अथवा पुराने ढँगके मनुष्य उसे बहुत कम समझते हैं और कोई कोई तो, कहीं थोड़ेसे दिये हुए केवल भावार्थ ही को वांचकर तृप्त हो लेते हैं। दूसरे समस्यन्त पदोंका अर्थ होनेसे कम बुद्धिवाले मनुष्य प्रत्येक खंडका अर्थ नहीं समझ सकते। इससे हमारे मित्रोंने उपर्युक्त ग्रंथों-की रीतिपर अर्थ छपानेकी सम्मति नहीं दी।

हमने इतने दिनों जो शिक्षकका कार्य किया है उससे यही अनुभव किया है कि पहिले 'नमः श्री वर्द्धमानाय' का अर्थ न लिख-कर 'यद्विद्या' का अर्थ लिखना, सो भी यत् और विद्याका अलग अलग न लिखके इकट्ठा यद्विद्याका अर्थ सर्वथा लिखना, सर्व साधारणको विशेष हितकर नहीं होता। अध्यापक की सहायताके विना पढ़ने वाले अथवा व्याकरण न जाननेवाले विद्यार्थियोंको तो रटन्त विद्या ही का दास बनना पड़ता है। इसलिये हमने इस ग्रंथको और ही रीतिसे सरल करनेका प्रयत्न किया है। आशा है कि इससे आप सज्जन असंतुष्ट न होवेंगे।

प्रकाशक।

विक्रीके लिये हमारी छपाई हुई पुस्तकें ।

देव दर्शन—इसमें पंडित दौलतरामजी कृत स्तुतिका सरल अर्थ है। शब्दार्थ, भावार्थ, टिप्पणी, प्रश्नमाला आदिके द्वारा जहां तक हो सका है खूब समझाया है। मूल्य एक प्रतिका एक आना, और पच्चीस प्रतिका सवा रुपया है।

जैन धर्म सिखानेकी सरल कुंजी भाग १—इसमें बाबू दयाचन्द्रजी कृत बाधबोध जैन धर्म भाग १ के पढ़ानेकी रीति है। मूल्य एक प्रतिका डेढ़ आना और पच्चीस प्रतिका दो रुपया है।

जैन धर्म सिखानेकी कुंजी भाग २—मूल्य ढाई आना और पच्चीस प्रतिका तीन रुपया है। ये तीनों पुस्तकें जैन पाठशालाओंके लिये बड़े कामकी हैं।

कल्याण मंदिर—नवीन प्राचीन कविता, अन्वय और हिन्दी अर्थ समेत छपाया है मूल्य एक प्रतिका चार आना और पच्चीस प्रतिका पांच रुपया है। यह भक्तिका अच्छा ग्रंथ है।

इन्द्रिय पराजय शतक—यह वैराग्यका ग्रंथ सबके लाभका है नवीन हिन्दी कविता कंठ करनेके योग्य है। एक प्रतिके दो आने।

पंचामृत प्रक्षाल—पाठकोंके हस्तगत ही है।

महावीराष्टक सार्थ, और **रत्नकरण्ड कथाकोष, भूपाल चौवीसी सार्थ** छप रहे हैं।

हमारा पता

मुधूलाल श्रावक, पाठक, जैन शाला, दमोह (म. प्र.)